1945 About a Diwali celebraion

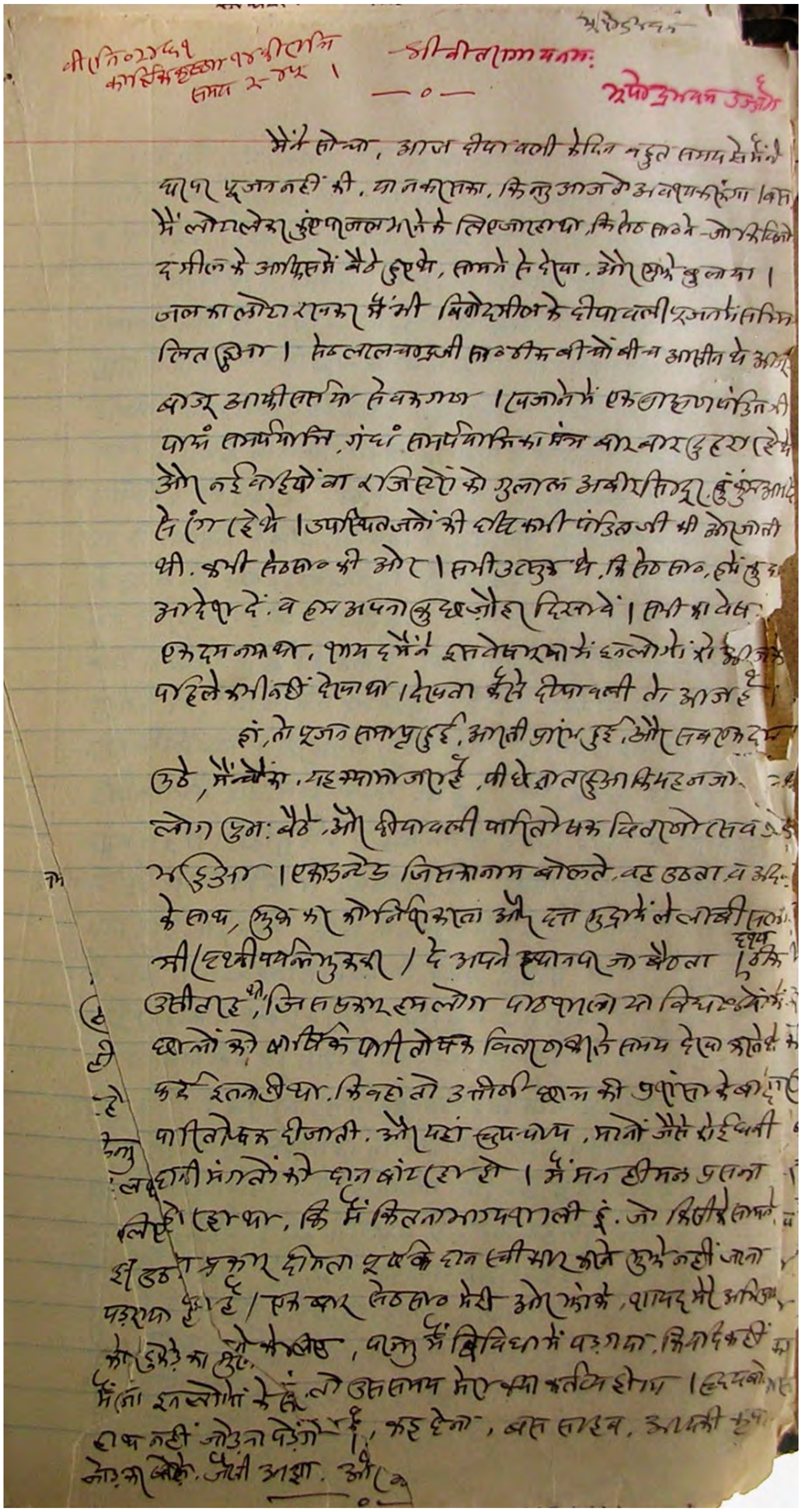

वी० नि० २४७१
कार्तिक कृष्णा १४ दीपावलि
सम्वत् २-७५ ।

श्री वीतरागाय नमः
—०—

[illegible]

मैंने सोचा, आज दीपावली के दिन बहुत समय से मैंने पान पूजन नहीं की, या न कर सका, किन्तु आज मैं अवश्य करूँगा । [illegible] मैं लोटा लेकर कुंए पर जल भरने के लिए जा रहा था, कि सेठ सा० ने — जो कि किसी [illegible] के आफ़िस में बैठे हुए थे, सामने से देखा, और मुझे बुलाया । जल का लोटा रखकर मैं भी विनोदशील के दीपावली पूजन में सम्मिलित हुआ । सेठ लालचन्दजी सा० ठीक बीचों बीच आसीन थे और बाजू आफीसर्स [illegible] ले बैठ गये । पूजन में एक ब्राह्मण पंडित श्री पाद्यं समर्पयामि, गंधं समर्पयामि का मंत्र बार बार दुहरा रहे थे और नई बहियों व रजिस्टरों को गुलाल अबीर सिंदूर, कुंकुम आदि दे रहे थे । उपस्थित जनों की दृष्टि कभी पंडितजी की ओर जाती थी, कभी सेठ सा० की ओर । सभी उत्सुक थे, कि सेठ सा०, हमें कुछ आदेश दें, व हम अपना कुछ जौहर दिखावें । सभी का वेश एक दम नया था, शायद मैंने इस वेश में इन लोगों को आज से पहिले कभी नहीं देखा था । देखता कैसे दीपावली तो आज है ।

हां, तो पूजन समाप्त हुई, आरती प्रारंभ हुई, और सब एक दम उठे, मैं चौंका, यह क्या हो जा रहा है, पीछे ज्ञात हुआ कि यह नजो [illegible] लोग क्रम: बैठे, और दीपावली पारितोषिक वितरण का सब [illegible] प्रारंभ हुआ । एकाउन्टेंट जिसका नाम बोलते, वह उठता व अदब के साथ, झुक कर कोर्निश करता और दस रुपये ले लेता [illegible] रुपये यथा क्रम [illegible] कर / वे अपने स्थान पर जा बैठता । ठीक उसी तरह, जिस प्रकार हम लोग पाठशाला या विद्यालयों में छात्रों को वार्षिक पारितोषिक वितरण के समय देखा करते हैं । अन्तर इतना ही था, कि वहां तो उत्तीर्ण छात्र की प्रशंसा के बाद पारितोषिक दी जाती, और यहां चुप-चाप, मानों जैसे कोई धनी लक्ष्मी [illegible] मंगतों को दान बांट रहे हों । मैं मन ही मन प्रसन्न हो रहा था, कि मैं कितना भाग्यशाली हूं, जो किसी के सामने इस प्रकार दीनता पूर्वक दान स्वीकार करने मुझे नहीं जाना पड़ रहा है / एक बार सेठ सा० मेरी ओर झांके, शायद मैं अधिक [illegible] को टुकड़े का [illegible], परन्तु मैं द्विविधा में पड़ गया, कि यदि कहीं मैं जो इन लोगों के [illegible] तो उस समय मेरा क्या कर्तव्य होगा । हृदय [illegible] हाथ नहीं जोड़ना पड़ेगा ? कह देना, बस साहब, आपकी कृपा [illegible] जोड़ कर बोले, जैसी आज्ञा, और

ही पर्याप्त है, मन बोला नहीं, यह बात तो सेठ साहब को अपमानजनक प्रतीत होगी, ऐसा नहीं कहना चाहिए। आखिर को हो तो उन्हीं के नौकर या सेवक। हृदय बोला भाई वाह, तुम यदि नौकर हो, तो क्या तुम्हारा आत्मा भी नौकर है, गधा है? नौकरी या परिश्रम करके अपना पारिश्रमिक लेते हो, किसी का अहसान थोड़े ही लेते हो। मन बोला, तो क्या ये दावत लेने वाले मुफ्त का खा रहे हैं, आखिर ये भी तो सेवक का अपना कर्तव्य पूरा करके ही लेते हैं। हृदय बोला, नहीं भाई बात यह नहीं है। लेते तो वे भी परिश्रम प्रदान करने के बाद ही हैं, किन्तु ये लोग समझते हैं, कि सेठ साहब, आज हम पर प्रसन्न हैं, इसलिए या सात-आठ की तपस्या के बाद प्रसन्न हुए हैं, इसलिए आज भोजों वस्त्रदान के रूप में यह उपकार किया जा रहा है, कि क्यों न हम उसे सहर्ष स्वीकार करें। परन्तु मेरी दृष्टि में तो यह बात जंचती ही नहीं, कि बिना किए कोई किसी को कुछ दे सकता है। यहां तो सदा यही भाव समाये रहते हैं कि, 'निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन' कि भला तू क्यों (कोई) यह मान सकता है।

इसी बीच में आत्माराम जी आ कूदे, और बोले, वाह वाह, खूब बहस छिड़ी हुई है? क्यों व्यर्थ अपने जीवन का अमूल्य समय यों ही गप्पाष्टकों में बिता रहे हो। क्या तुम्हें याद नहीं। आज गौतम स्वामी ने वह अनन्त अक्षय केवलज्ञान लक्ष्मी प्राप्त की थी, जिसे सुरपति, गणपति सुरेन्द्र तक नमस्कार करते थे, और तुम इन उज्ज्वल ... ही लक्ष्मी मात्र की रात्रि के नमस्कार की चर्चा में पड़े रहे हो। ओ तूने इस पौद्गलिक लक्ष्मी को तो अनेक बार पाया, किन्तु उस अक्षय लक्ष्मी का तो आज तक स्पर्श तक भी नहीं किया। यह लक्ष्मी तो यहीं पड़ी रह जायेगी, और वह तुम्हारे कल्याण के लिए होगी। यह पराश्रित है, और वह तो आत्म स्वाश्रित है। उठ यहां से, और चल अपना कर्तव्य पूरा कर। सोते हुए लगता है, और सबके ही समान अपने को भी गिनने लगा है, और टुकड़े का गुलाम मानने लगा है। तू तो वह सौभाग्यशाली पुरुष है जो इन लोगों के समान पौद्गलिक लक्ष्मी को पा उसके द्वारे हाथ नहीं जोड़ना पड़ेगा। यह सुनते ही हृदय और मन दोनों हाथ जोड़कर बोले, जैसी आज्ञा, और आत्मा के पीछे चल दिए।

———०———

3।33 पर लेखन।